



धारावाहिक

दस हज़ार बुद्धों के लिए एक सौ गाथाएं

मा धर्म ज्योति ओशो के नव-संन्यास आंदोलन में सर्वप्रथम संन्यस्त मित्रों में से एक हैं। ओशो के साथ बिताये अंतरंग क्षणों की वार्ता को उन्होंने 'वन हंड्रेड टेल्स फॉर टेन थाउजेंड बुद्धाज़' पुस्तक में संजोया है, जो मूलतः अंग्रेज़ी भाषा में है। इस पुस्तक का कई भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। हिंदी में इसका अनुवाद मा बोधि शशि ने किया है : प्रस्तुत है :- "दस हज़ार बुद्धों के लिए एक सौ गाथाएं" की अंतिम किश्त...

मेरी वह माला खो गई है जो ओशो ने मुझे दी थी और एक नई माला मैंने बनवाई है। जिस दिन मुझे नई माला मिलती है, इसे पर्स में डालकर मैं सुमिला ले आती हूँ। मेरी आकांक्षा है कि यह माला मैं ओशो को दूँ और वे इसे मेरे गले में पहना दें। मैं किसी से भी इस विषय में बात नहीं करती लेकिन किसी तरह मेरे सद्गुरु सुन लेते हैं। दोपहर भोजन के बाद नीलम ओशो के कमरे से बाहर आती है और कहती है, 'ओशो पूछ रहे हैं अगर किसी को उनसे मिलना है तो।' मैं खुशी में उछल पड़ती हूँ और अपने दोनों हाथ ऊपर उठा देती हूँ। कुछ और मित्र भी हैं जो ओशो से मिलने की इच्छा व्यक्त करते हैं।

3.00 बजे हम सब नीलम के साथ ओशो के कमरे में जाते हैं। वे कुर्सी पर बैठे हुए हैं और हम सबको देखकर मुस्कराते हैं। हम सब फर्श पर उनके चारों ओर बैठ जाते हैं। वे सबके साथ व्यक्तिगत रूप से बात करते हैं। जब वे सबसे बात कर चुकते हैं तो मैं अपनी नई माला

निकालकर उन्हें देती हूँ। वे पूछते हैं, 'तेरी पुरानी माला को क्या हुआ?' मैं कहती हूँ, 'वह मेरे कमरे से चोरी हो गई थी।' वे कुछ देर सोचते हैं और फिर मुझे करीब आने को कहते हैं। मैं उनकी कुर्सी की ओर खिसककर अपनी आंखें बंद कर लेती हूँ। जब वे माला मेरे गले में डालते हैं तो मेरा सिर झुक जाता है और वे अपना बायां हाथ मेरे सिर पर रख देते हैं। उनके चमत्कारिक स्पर्श से मेरे सभी विचार ठहर जाते हैं। और मौन में मैं उनके स्पर्श की ऊष्मा और उनके बरसते हुए आशीष को महसूस करती हूँ।

ओशो का शरीर स्वस्थ नहीं चल रहा और वे कुछ दिन के लिए बोलना बंद कर देते हैं। इस बीच बंबई के कुछ मित्र उनके लिए कोई नई जगह भी खोज रहे हैं। ओशो की मौजूदगी चुंबकीय मशाल जैसी है। वे जहां भी हों, सत्य के खोजी उन्हीं ओर खिंचे चले आते हैं। हर रोज

पश्चिम से और-और संन्यासी पहुंच रहे हैं। सुमिला में रहते हुए ओशो को लगभग पांच महीने हो चुके हैं। पड़ोसी ओशो की उपस्थिति और आने वालों की बढ़ती भीड़ से परेशान होने लगे हैं।

एक शाम, हमें पता चलता है कि कुछ ही दिनों में ओशो पूना जाने वाले हैं। तो हम अपनी तैयारी करने लगते हैं और आनंदित होते हैं कि उनके साथ पूना चले जाएंगे।

3 जनवरी 1987 को सुबह-सबेरे ओशो पूना पहुंच जाते हैं। कुछ दिन आराम करने के बाद वे रोज सुबह-शाम च्वांगत्सू सभागार में प्रवचन देने लगते हैं। उनका शरीर अब काफी तंदुरुस्त नज़र आता है और आवाज़ भी शुरू के दिनों की तरह आननेय हो गई है।

ज़रथुस्त्र पर प्रवचनमाला के दौरान ओशो आते-जाते समय हमारे साथ नाचने लगते हैं। ऐसा लगता है जैसे गुरु और शिष्य के बीच ऊर्जा का खेल चल रहा है। पूरा वातावरण पुनः उनकी

ऊर्जा से आपूरित हो उठा है। लेकिन यह ज्यादा दिन नहीं चलता। ओशो के कंधों में दर्द होने लगता है व उनके कान में कोई इनफेक्शन हो जाता है और वे बाहर आना बंद कर देते हैं। जो कान विशेषज्ञ ओशो का इलाज कर रहा है वह जब यह पाता है कि कोई इलाज जरा भी विधायक परिणाम नहीं ला पा रहा है तो वह दुविधा में पड़ जाता है। ओशो का खून जांच के लिए पश्चिम ले जाया जाता है जिससे यह पता चलता है कि अमेरिकी जेलों में उन्हें जहर दिया गया है।

उनकी आंखें दिन प्रतिदिन कमजोर होती जा रही हैं और किसी तरह की रोशनी सहन नहीं कर पाती। कई दिनों के बाद वे बुद्धा हॉल में वापस आते हैं लेकिन चश्मा पहनकर। चश्में में वे मुझे और भी सुंदर लगते हैं लेकिन मैं उनकी सागर जैसी सुंदर आंखों में नहीं झांक पाती।

मैं देखती हूँ कि ओशो का शरीर रोज़ क्षीण होता जा रहा है। उनका वज़न कम हो रहा है और वे अधिकाधिक कमजोर महसूस कर रहे हैं। अपनी अस्वस्थता के कारण उन्हें बार-बार बोलना बंद करना पड़ता है। पिछले कुछ समय से ओशो अपनी परिचारिका व अपने डॉक्टर के अतिरिक्त और किसी से नहीं मिल रहे हैं। इन दिनों मैं शारीरिक रूप से ओशो से कभी नहीं मिलती। अब ओशो के साथ मेरा संबंध किसी गहरे तल पर है। मुझे ऐसा धुंधला सा अहसास है कि ओशो ज्यादा दिन अब हमारे बीच नहीं रहेंगे। मैं स्तब्ध रह जाती हूँ जब ओशो हमें यह संदेश भेजते हैं कि बुद्धा हॉल में हम सफेद चोगे पहनने शुरू कर दें। भारतीय परंपरा में लोग सफेद कपड़े पहनकर तभी एकत्रित होते हैं, जब कोई मर जाता है। मैं एक बार फिर से चौंक जाती हूँ जब यह देखती हूँ कि कम्प्यून की सभी दीवारों काले रंग से रंगी जा रही हैं।

झेन पर अपनी अंतिम प्रवचनमाला में ओशो का आग्रह ध्यान पर ही है। हर प्रवचन के बाद वे हमें ध्यान में गहरे और ज्यादा गहरे ले जाते हैं। मुझे लगता है कि ओशो अपनी पेन्टिंग को अंतिम रूप से संवार रहे हैं।

अप्रैल 1989 में ओशो फिर से बोलना बंद

कर देते हैं। वे बीस मिनट के लिए बुद्धा हॉल में हमारे साथ मौन बैठने के लिए आते हैं। वे बहुत ही नाजुक लगने लगे हैं। लेकिन अभी भी आते समय या वापस जाते समय हर दिशा में घूमकर दोनों हाथ जोड़कर वे सबको नमस्कार करते हैं। कई बार मुझे लगता है कि उनकी टांगें कंप रही हैं और मेरा हृदय चिल्लाना चाहता है, 'कृपया ओशो, इस सब की जरूरत नहीं है। अपने शरीर को इतनी तकलीफ न दें।' लेकिन वे कभी नहीं रुकते। वे आगे बढ़ते चलते जाते हैं। हर रोज़ बाहर आते हैं और अपने तरीके से जो उन्हें करना है, वे करते हैं।

नौ दिसंबर 1989 को निर्वाणो की मृत्यु की खबर सुनकर मैं स्तब्ध रह जाती हूँ। मुझे याद आता है कि एक पुराने प्रवचन में मैंने उन्हें यह कहते सुना था कि 'जब सद्गुरु देह त्याग करता है तो वे लोग जो उसके साथ गहरे जुड़े होते हैं, वे जीवित नहीं रहते,' और ऐसे लोगों में उन्होंने निर्वाणो का नाम लिया था। मुझे लगता है कहीं निर्वाणो की मृत्यु ने ओशो के शरीर को तो किसी तरह प्रभावित नहीं किया।

11 दिसंबर 1989 को ओशो के जन्मदिन पर मैं बहुत उदास हूँ और उन्हें फूल भी नहीं भिजवाती। शाम दर्शन के समय जब ओशो सब ओर घूमकर सबको दोनों हाथ जोड़ नमस्कार कर रहे हैं तो मेरा हृदय पीड़ा से भरा हुआ है। जब वे मेरी ओर देखते हैं तो उनके जन्मदिन के उपहारस्वरूप मेरी आंखों से आंसू झर पड़ते हैं। सत्संग के दौरान मुझे महसूस होता है कि ओशो अपनी ऊर्जा समेट रहे हैं और हमें छोड़कर जाने की तैयारी कर रहे हैं। मेरा मन मेरे भावों को पीछे ढकेलकर कहता है, 'नहीं, नहीं। वे हमें इतनी जल्दी छोड़कर नहीं जाएंगे।'

एक शाम ओशो के डॉक्टर बुद्धा हॉल में यह घोषणा करते हैं कि सत्संग के समय कोई व्यक्ति मंत्रों का जाप करके ओशो की ओर नकारात्मक ऊर्जा फेंक रहा है जो कि उनके नाभि-केंद्र पर चोट पहुंचा रही है। वह उस व्यक्ति से इस क्रिया

को बंद करने की विनती करते हैं। कुछ दिन बाद यह घोषणा फिर से दोहराई जाती है कि कोई व्यक्ति काले जादू का प्रयोग करके, जानबूझकर ओशो को नुकसान पहुंचाने की कोशिश कर रहा है। ओशो का संदेश है कि वे यह ऊर्जा उस व्यक्ति पर वापस फेंक सकते हैं लेकिन ऐसा करना उनका ढंग नहीं है। उनकी अपार करुणा उन्हें ऐसा नहीं करने देगी।

ओशो का शरीर चूंकि हमारे लिए सबसे बहुमूल्य है, हम, ओशो के संन्यासी उस व्यक्ति को दूढ़ निकालने की कोशिश करते हैं। कुछ दिन तक बैठने की व्यवस्था को बदल-बदल कर देखा जाता है लेकिन सब निष्फल हो जाता। मंत्र-जाप जारी रहता है और इस सबके बावजूद ओशो बुद्धा हॉल में बराबर आते रहते हैं।

एक शाम मैं पाती हूँ कि मेरी नियत जगह पर कोई और बैठा हुआ है। मैं उस व्यक्ति से इस विषय में पूछती हूँ तो वह बताता है कि आज बैठने की व्यवस्था अलग ढंग से है। सभी भारतीयों को एक ओर बैठना है और मैं अपनी जगह चुन सकती हूँ। वह यह भी बताता है कि आज सत्संग के समय हमें अपनी आंखें खुली रखनी है। इस सबके बारे में पता लगाने, का पर्याप्त समय नहीं है। मैं चौथी पंक्ति में ओशो के दाहिनी तरफ लगभग 45 डिग्री के कोण पर अपनी जगह बनाकर बैठ जाती हूँ।

ओशो बुद्धा हॉल के पोडियम पर प्रवेश करते हैं। संगीत चल रहा है और उनका चेहरा अत्यंत पारदर्शी व प्रकाशमय लग रहा है। सबको धीरे-धीरे हाथ जोड़ कर नमस्कार कर वे अपनी कुर्सी पर बैठ जाते हैं और अपनी आंखें बंद कर लेते हैं। मैं पूरी आंखें खोलकर उन्हें अपलक निहार रही हूँ। उनका चेहरा प्रकाशपूर्ण आभा बिखेर रहा है। कुछ मिनट बाद संगीत रुकता है और चारों ओर गहन शांति छा जाती है। ओशो धीरे से अपनी आंखें खोलते हैं और अपनी दृष्टि घुमाते हुए अपने संभाव्य बुद्धों को ध्यानमग्न देखते हैं। जब वे अपना चेहरा मेरी ओर करते हैं तो एक क्षण में ही मेरी खुली आंखें उनकी आंखों से जुड़ जाती है। मैं बिलकुल जम-सी जाती हूँ।

भय की एक लहर मेरे शरीर में सिहरन पैदा कर देती है और मेरा शरीर कंपने लगता है। ओशो निरंतर मेरी आंखों में देखते रहते हैं। मेरा मन बिलकुल शून्य हो जाता है और बस एक यही होश बना रहता है कि वे मेरी आंखों में देख रहे हैं। मैं यह नहीं कह सकती कि यह कितनी देर तक चलता रहा, शायद दो मिनट, लेकिन ऐसे लगा जैसे अनंतकाल हो। मेरी आंखें अपने आप ही बंद हो जाती हैं और मैं अपने भीतर गहरे मौन में डूबती जाती हूँ। जब मैं अपनी आंखें खोलती हूँ तो ओशो पोटियम से जा चुके हैं और बुद्धा हॉल करीब-करीब खाली है। मैं अब और नहीं सोच सकती। किसी तरह उठकर मैं अपने शरीर को अपने कमरे तक घसीटकर ले जाती हूँ और बिस्तर पर लेट जाती हूँ। मैं कुछ समझ नहीं पाती कि आखिर हुआ क्या है!

मैं एक ऐसे छोटे बच्चे की तरह रोने लगती हूँ जिसका सब कुछ खो गया हो और जो कहीं बिलकुल अकेला छूट गया हो। मैं रोते-रोते ही सो जाती हूँ।

सुबह मैं बहुत तरोताजा और निर्भर होकर जागती हूँ। मैं अपनी चाय तैयार करती हूँ और आंखें बंद करके जब धीरे-धीरे चाय पीने लगती हूँ तो मुझे बोध होता है कि मेरे गर्भ में शून्य जन्मा है, जिसका मुझे पूरा ख्याल रखना है।

17 जनवरी 1990 को मैं बंबई रजिस्ट्रार के ऑफिस में कुछ कागजात पर हस्ताक्षर करने के लिए जाती हूँ। किसी कारणवश कागजात अभी तैयार नहीं हैं और मुझे 20 जनवरी का समय मिलता है। मैं 18 जनवरी की सुबह ही पूना वापस लौटने का तय कर लेती हूँ।

17 जनवरी की शाम को मैं एक ध्यान केंद्र पर अपने मित्रों से मिलने के लिए जाती हूँ। जब मैं उन्हें बताती हूँ कि मुझे 20 जनवरी को वापस आना है तो वे सलाह देते हैं कि दो दिन के लिए मैं पूना न जाऊँ और उन्हीं के पास ठहर जाऊँ। मैं उनके प्रस्ताव को यह कहकर अस्वीकृत कर देती हूँ कि, 'अब ओशो का शरीर भरोसे योग्य

नहीं है। वे किसी भी क्षण अपना शरीर छोड़ सकते हैं। मैं दो दिन के लिए भी दूर रहना नहीं चाहती।'

18 जनवरी की सुबह मैं पूना की फ्लाइट पकड़ने के लिए बंबई एयरपोर्ट जाती हूँ। वहाँ कुछ और संन्यासी भी हैं, जो पश्चिम से आए हैं। वे ओशो के स्वास्थ्य के विषय में पूछते हैं तो मैं उन्हें कहती हूँ, 'उनका स्वास्थ्य काफी अच्छा है और हर शाम वे सत्संग के लिए बुद्धा हॉल में आ रहे हैं।' वे यह सुनकर खुश हो जाते हैं और साथ ही इस बात से उत्तेजित हैं कि आज ही शाम वे उन्हें देख सकेंगे।

जब हम पूना पहुंचते हैं तो हमें पता चलता है कि 17 जनवरी को ओशो सिर्फ बुद्धा हॉल में आए और सबको नमस्कार कर चले गए। वे सत्संग के लिए नहीं रुके और बहुत कमजोर लग रहे थे। 18 जनवरी की शाम वे अपने कमरे से बाहर नहीं आते और यह संदेश भेजते हैं कि अपने कमरे में बैठकर ही वे हमारे साथ ध्यान करेंगे।

19 जनवरी 1990 को कम्प्यून का सारा काम हमेशा की तरह चल रहा था। बुद्धा हॉल में ओशो की शारीरिक अनुपस्थिति अब कोई नई बात नहीं है। पिछले वर्ष के दौरान उन्होंने हमें इसके लिए तैयार कर दिया है।

करीब 5.30 बजे मा नीलम रोती हुई माताजी के कमरे में यह समाचार देने के लिए आती हैं कि ओशो ने अपना शरीर छोड़ दिया है। कुछ मिनटों तक तो मैं सूनी आंखों से नीलम की ओर ही देखती रह जाती हूँ और समझ में नहीं आ रहा कि वह कह क्या रही है। नीलम आंसुओं में डूबी हुई हैं। जब मैं उनसे गले मिलती हूँ तो मुझे बोध होता है कि वास्तव में क्या हुआ है। श्वेत हंस विशाल नीले आकाश में उड़ गया है और पीछे कोई पदचिह्न भी नहीं छोड़े हैं।

ओशो की इच्छा के अनुरूप, उसी संध्या-सभा में उनका शरीर गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में दस मिनट के लिए लाकर रखा जाता है। दस हजार शिष्य और प्रेमीजन उनकी आखिरी विदाई का उत्सव संगीत-नृत्य,

भावातिरेक और मौन में मनाते हैं। फिर उनका शरीर दाहक्रिया के लिए ले जाते हैं। एक वृहत् ऊर्जा फैल जाती है और जो लोग उनके प्रेम में हैं, वे इस अनूठी, ऊर्जा की तरंग पर सवार होकर उत्सव मना रहे हैं।

घाट पर ठीक सामने खड़ी मैं अपने प्यारे सद्गुरु के शरीर को अग्नि में विलीन होते देख रही हूँ। इक्कीस जनवरी 1990 की पूर्वाह्न में उनके अस्थि-फूल का कलश महोत्सवपूर्वक कम्प्यून में लाया गया है। कम्प्यून के मुख्य द्वार से लाओत्सु हाऊस तक जाती हुई सड़क के दोनों किनारे-नाचते गाते उनके प्रेमी हाथ में फूल लिए कतार-बद्ध खड़े हैं। मेरे आंसू थमते नहीं थमते। अपने प्यारे सद्गुरु को फूल भेंटकर मैं एक कोने में आंखें बंद कर बैठ जाती हूँ। जैसे ही मेरा मन शांत होता है, अचानक अनुभव करती हूँ कि ओशो मुझे शून्य की तरह चारों ओर से घेरे हुए हैं। आश्चर्य! उन की उपस्थिति पहले से भी सघन अनुभव हो रही है। ओशो के आखिरी दिए हुए संदेश याद आते हैं। उन्होंने कहा है कि 'मेरे देह छोड़ने के बाद मेरे लोग मेरी उपस्थिति और भी सघन रूप से अनुभव करेंगे।'

21 जनवरी 1990 के पूर्वाह्न में उनके अस्थिफूल का कलश महोत्सवपूर्वक कम्प्यून में लाकर च्वांगत्सु हाल में निर्मित संगमरमर के समाधिभवन में स्थापित किया जाता है। ओशो की समाधि पर स्वर्ण अक्षरों से अंकित है :

OSHO
Never Born
Never Died
Only Visited this
Planet Earth between
Dec. 11-1931 - Jan 19-1990

— समाप्त
(यह पुस्तक ओशो वर्ल्ड गैलरिया में
उपलब्ध है)

